नमो नमो निम्मलदंसणस्स

बाल ब्रह्मचारी श्री नेमिनाथाय नम:

पूज्य आनन्द-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर-गुरूभ्यो नम:

आगम-२१

पुष्पिका

आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद

अनुवादक एवं सम्पादक

आगम दीवाकर मुनि दीपरत्नसागरजी

[M.Com. M.Ed. Ph.D. श्रुत महर्षि]

'आगम' हिन्दी-अनुवाद-श्रेणी पुष्प-२१

आगमसूत्र-२१- 'पुष्पिका'

उपांगसूत्र-१०- हिन्दी अनुवाद

कहां क्या देखे ?

क्रम	विषय	पृष्ठ	क्रम	विषय	पृष्ठ
१	अध्ययन- १- चंद्र	०५	५	अध्ययन- ५-	१९
२	अध्ययन- २- सूर्य	०७	६	अध्ययन- ६-	२०
३	अध्ययन- ३- शुक्र	०८	७	अध्ययन- ७ से १०	२०
४	अध्ययन- ४-	१३	---	----------	

४५ आगम वर्गीकरण						
क्रम	आगम का नाम	सूत्र		क्रम	आगम का नाम	सूत्र
०१	आचार	अंगसूत्र-१		२५	आतुरप्रत्याख्यान	पयन्नासूत्र-२
०२	सूत्रकृत्	अंगसूत्र-२		२६	महाप्रत्याख्यान	पयन्नासूत्र-३
०३	स्थान	अंगसूत्र-३		२७	भक्तपरिज्ञा	पयन्नासूत्र-४
०४	समवाय	अंगसूत्र-४		२८	तंदुलवैचारिक	पयन्नासूत्र-५
०५	भगवती	अंगसूत्र-५		२९	संस्तारक	पयन्नासूत्र-६
०६	ज्ञाताधर्मकथा	अंगसूत्र-६		३०.१	गच्छाचार	पयन्नासूत्र-७
०७	उपासकदशा	अंगसूत्र-७		३०.२	चन्द्रवेध्यक	पयन्नासूत्र-७
०८	अंतकृत् दशा	अंगसूत्र-८		३१	गणिविद्या	पयन्नासूत्र-८
०९	अनुत्तरोपपातिकदशा	अंगसूत्र-९		३२	देवेन्द्रस्तव	पयन्नासूत्र-९
१०	प्रश्नव्याकरणदशा	अंगसूत्र-१०		३३	वीरस्तव	पयन्नासूत्र-१०
११	विपाकश्रुत	अंगसूत्र-११		३४	निशीथ	छेदसूत्र-१
१२	औपपातिक	उपांगसूत्र-१		३५	बृहत्कल्प	छेदसूत्र-२
१३	राजप्रश्निय	उपांगसूत्र-२		३६	व्यवहार	छेदसूत्र-३
१४	जीवाजीवाभिगम	उपांगसूत्र-३		३७	दशाश्रुतस्कन्ध	छेदसूत्र-४
१५	प्रज्ञापना	उपांगसूत्र-४		३८	जीतकल्प	छेदसूत्र-५
१६	सूर्यप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-५		३९	महानिशीथ	छेदसूत्र-६
१७	चन्द्रप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-६		४०	आवश्यक	मूलसूत्र-१
१८	जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-७		४१.१	ओघनिर्युक्ति	मूलसूत्र-२
१९	निरयावलिका	उपांगसूत्र-८		४१.२	पिंडनिर्युक्ति	मूलसूत्र-२
२०	कल्पवतंसिका	उपांगसूत्र-९		४२	दशवैकालिक	मूलसूत्र-३
२१	पुष्पिका	उपांगसूत्र-१०		४३	उत्तराध्ययन	मूलसूत्र-४
२२	पुष्पचूलिका	उपांगसूत्र-११		४४	नन्दी	चूलिकासूत्र-१
२३	वृष्णिदशा	उपांगसूत्र-१२		४५	अनुयोगद्वार	चूलिकासूत्र-२
२४	चतु:शरण	पयन्नासूत्र-१		---	----------	-----

मुनि दीपरत्नसागरजी प्रकाशित साहित्य

आगम साहित्य			आगम साहित्य		
क्र	साहित्य नाम	बुक्स	क्रम	साहित्य नाम	बू
1	मूल आगम साहित्य:-	147	6	आगम अन्य साहित्य:-	10
	-1- आगमसुत्ताणि-मूलं print	[49]		-1- આગમ કથાનુયોગ	06
	-2- आगमसुत्ताणि-मूलं Net	[45]		-2- आगम संबंधी साहित्य	02
	-3- आगममञ्जूषा (मूल प्रत)	[53]		-3- ऋषिभाषित सूत्राणि	01
2	आगम अनुवाद साहित्य:-	165		-4- आगमिय सूक्तावली	01
	-1- આગમસૂત્ર ગુજરાતી અનુવાદ	[47]		आगम साहित्य- कुल पुस्तक	516
	-2- आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद Net	[47]			
	-3- AagamSootra English Trans.	[11]			
	-4- આગમસૂત્ર સટીક ગુજરાતી અનુવાદ	[48]			
	-5- आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद print	[12]		अन्य साहित्य:-	
3	आगम विवेचन साहित्य:-	171	1	તત્ત્વાભ્યાસ સાહિત્ય-	13
	-1- आगमसूत्र सटीकं	[46]	2	સૂત્રાભ્યાસ સાહિત્ય-	06
	-2- आगमसूत्राणि सटीकं प्रताकार-1	[51]	3	વ્યાકરણ સાહિત્ય-	05
	-3- आगमसूत्राणि सटीकं प्रताकार-2	[09]	4	વ્યાખ્યાન સાહિત્ય-	04
	-4- आगम चूर्णि साहित्य	[09]	5	જિનભક્તિ સાહિત્ય-	09
	-5- सवृत्तिक आगमसूत्राणि-1	[40]	6	વિધિ સાહિત્ય-	04
	-6- सवृत्तिक आगमसूत्राणि-2	[08]	7	આરાધના સાહિત્ય	03
	-7- सचूर्णिक आगमसुत्ताणि	[08]	8	પરિચય સાહિત્ય-	04
4	आगम कोष साहित्य:-	14	9	પૂજન સાહિત્ય-	02
	-1- आगम सद्दकोसो	[04]	10	તીર્થંકર સંક્ષિપ્ત દર્શન	25
	-2- आगम कहाकोसो	[01]	11	પ્રકીર્ણ સાહિત્ય-	05
	-3- आगम-सागर-कोष:	[05]	12	દીપરત્નસાગરના લઘુશોધનિબંધ	05
	-4- आगम-शब्दादि-संग्रह (प्रा-सं-गु)	[04]		आगम सिवायनुं साहित्य कूल पुस्तक	85
5	आगम अनुक्रम साहित्य:-	09			
	-1- આગમ વિષયાનુક્રમ- (મૂળ)	02		1-आगम साहित्य (कुल पुस्तक)	51
	-2- आगम विषयानुक्रम (सटीकं)	04		2-आगमेतर साहित्य (कुल	08
	-3- आगम सूत्र-गाथा अनुक्रम	03		दीपरत्नसागरजी के कुल प्रकाशन	60

મુનિ દીપરત્નસાગરનું સાહિત્ય

1	મુનિ દીપરત્નસાગરનું આગમ સાહિત્ય	[કુલ પુસ્તક 516]	તેના કુલ પાના [98,300]
2	મુનિ દીપરત્નસાગરનું અન્ય સાહિત્ય	[કુલ પુસ્તક 85]	તેના કુલ પાના [09,270]
3	મુનિ દીપરત્નસાગર સંકલિત 'तत्त्वार्थसूत्र'ની વિશિષ્ટ DVD		તેના કુલ પાના [27,930]

અમારા પ્રકાશનો કુલ ૬૦૧ + વિશિષ્ટ DVD કુલ પાના 1,35,500

[२१] पुष्पिका
उपांगसूत्र-१०- हिन्दी अनुवाद

अध्ययन-१–चन्द्र

सूत्र - १

भदन्त! यदि श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त भगवान महावीर ने द्वितीय उपांग कल्पवतंसिका का यह भाव प्रतिपादन किया है तो भगवन् ! उपांगों के तृतीय वर्ग रूप पुष्पिका का क्या अर्थ कहा है ? आयुष्मन् जम्बू ! तृतीय उपांग वर्ग रूप पुष्पिका के दस अध्ययन कहे हैं ।

सूत्र - २

चन्द्र, सूर्य, शुक्र, बहुपुत्रिका, पूर्णभद्र, माणिभद्र, दत्त, शिव, बल और अनादृत ।

सूत्र - ३

हे भदन्त ! श्रमण भगवान ने प्रथम अध्ययन का क्या आशय कहा है ? आयुष्मन् जम्बू ! उस काल और समय में राजगृह नगर था । गुणशिलक चैत्य था । श्रेणिक राजा राज्य करता था ।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर स्वामी पधारे । दर्शनार्थ परिषद नीकली । उस काल और उस समय में ज्योतिष्कराज ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र चन्द्रावतंसक विमान की सुधर्मा सभा में चन्द्र नामक सिंहासन पर बैठकर ४००० सामानिक देवों यावत् सपरिवार चार अग्रमहिषियों, तीन परिषदाओं, सात प्रकार की सेनाओं, सात उनके सेनापतियों, १६००० आत्मरक्षक देवों तथा अन्य दूसरे भी बहुत से उस विमानवासी देव-देवियों सहित निरंतर महान गंभीर ध्वनिपूर्वक निपुण पुरुषों द्वारा वादित–वीणा, हस्ततात, कांस्यताल, त्रुटित, घन मृदंग आदि वाद्यों एवं नाट्यों के साथ दिव्य भोगोपभोगों को भोगता हुआ विचर रहा था ।

उसने अपने विपुल अवधिज्ञान से अवलोकन करते हुए इस केवल-कल्प जम्बूद्वीप को और श्रमण भगवान महावीर को देखा । तब भगवान के दर्शनार्थ जाने का विचार करके सूर्याभदेव के समान अपने आभियोगिक देवों को बुलाया यावत् उन्हें देव-देवेन्द्रों के अभिगमन करने योग्य कार्य करने की आज्ञा दी फिर अपने पदाति सेनानायक को आज्ञा दी–सुस्वरा घंटा बजाकर सब देव-देवियों को भगवान के दर्शनार्थ चलने के लिए सूचित करो । यावत् सूर्याभदेव के समान नाट्यविधि आदि प्रदर्शित करने की विकुर्वणा की । इतना अंतर है कि उसका यान-विमान १००० योजन विस्तीर्ण और ६२।। योजन ऊंचा था । माहेन्द्रध्वज की ऊंचाई २५ योजन की थी ।

भगवन् गौतम ने श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार करके निवेदन किया–भन्ते ! ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिष्कराज चंद्र द्वारा विकुर्वित वह सब दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य दैविक प्रभाव कहाँ चले गये ? कहाँ समा गये ? गौतम ! चन्द्र द्वारा विकुर्वित वह सब दिव्य ऋद्धि आदि उसके शरीर में चली गई, शरीर में प्रविष्ट हो गई–पूर्वभव सम्बन्धी प्रश्न– श्रमण भगवान महावीर ने कहा–

गौतम ! उस काल और उस समय में श्रावस्ती नगरी थी । कोष्ठक चैत्य था। अंगति गाथापति–था, जो धनाढ्य यावत् लोगों द्वारा अपरिभूत था–वह अंगजित गाथापति श्रावस्ती नगरी के बहुत से नगरनिवासी व्यापारी, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह, दूत, संधिपालक, आदि के अनेक कार्यों में, कारणों में, मंत्रणाओं में, पारिवारिक समस्याओं में, गोपनीय बातों में, निर्णयों में, सामाजिक व्यवहारों पूछने योग्य एवं विचार–करने योग्य था एवं अपने कुटुम्ब परिवार का मेढि–प्रमाण, आधार, आलंबन, चक्षु, मेढिभूत यावत् तथा सब कार्यों में अग्रेसर था ।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर के समान धर्म की आदि करनेवाले इत्यादि, नौ हाथ की अवगाहना वाले पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्वप्रभु १६००० श्रमणों एवं ३८००० आर्याओं के समुदाय के साथ गमन करते हुए यावत् कोष्ठक चैत्य में पधारे । परिषद् दर्शनार्थ नीकली ।

तब वह अंगजित गाथापति इस संवाद को सूनकर हर्षित एवं संतुष्ट होता हुआ कार्तिक श्रेष्ठी के समान नीकला यावत् पर्युपासना की । धर्म को श्रवण कर और अवधारित कर उसने प्रभु से निवेदन किया–देवानुप्रिय ! ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब में स्थापित करूँगा । तत्पश्चात् मैं यावत् प्रव्रजित होऊंगा । गंगदत्त के समान वह प्रव्रजित हुआ यावत् गुप्त ब्रह्मचारी अनगार हो गया ।

अंगजित अनगार ने अर्हत् पार्श्व के तथारूप स्थविरों से सामायिक आदि ले लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया । चतुर्थभक्त यावत् आत्मा को भावित करते हुए बहुत वर्षों तक श्रमण-पर्याय का पालन करके अर्धमासिक संलेखना पूर्वक अनशन द्वारा तीस भक्तों का छेदन कर–मरण करके संयम-विराधना के कारण चन्द्रावतंसक विमान की उपपात–शैया में ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र के रूप में उत्पन्न हुआ । तब सद्यः उत्पन्न ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिष्कराज चन्द्र पाँच प्रकार की पर्याप्तियों से पर्याप्तभाव को प्राप्त हुआ–आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति और भाषामनःपर्याप्ति ।

भदन्त ! ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिष्कराज चन्द्र की कितने काल की आयु–है ? गौतम ! एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की है । आयुष्मन् जम्बू ! इस प्रकार से यावत् मोक्षप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने पुष्पिका के प्रथम अध्ययन का यह भाव निरूपण किया है, ऐसा मैं कहता हूँ ।

अध्ययन-१-का मुनि दीपरत्नसागरकृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

अध्ययन-२-सूर्य

सूत्र - ४

भदन्त ! यदि श्रमण भगवान महावीर ने पुष्पिका के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा है तो द्वितीय अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

आयुष्मन् जम्बू ! उस काल और उस समय में राजगृह नगर था । गुणशिलक चैत्य था । श्रेणिक राजा था । श्रमण भगवान महावीर का पदार्पण हुआ । जैसे भगवान की उपासना के लिए चन्द्र आया था उसी प्रकार सूर्य इन्द्र का भी आगमन हुआ यावत् नृत्य-विधियाँ प्रदर्शित कर वापिस लौट गया ।

गौतम स्वामी ने सूर्य के पूर्वभव के विषय में पूछा । श्रावस्ती नाम की नगरी थी । वहाँ धन-वैभव आदि से संपन्न सुप्रतिष्ठ नामक गाथापति रहता था । वह भी अंगजित के समान यावत् धनाढ्य एवं प्रभावशाली था । वहाँ पार्श्व प्रभु पधारे । अंगजित के समान वह भी प्रव्रजित हुआ और उसी तरह संयम की विराधना करके मरण को प्राप्त होकर सूर्य-विमान में देव रूप से उत्पन्न हुआ ।

आयुक्षय होने के अनन्तर वहाँ से च्यव कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्धि प्राप्त करेगा यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेगा ।

अध्ययन-२-का मुनि दीपरत्नसागरकृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

अध्ययन-३-शुक्र

सूत्र - ५

भगवन् ! यदि श्रमण भगवान महावीर ने पुष्पिका के द्वितीय अध्ययन का यह आशय प्ररूपित किया है तो तृतीय अध्ययन का क्या भाव बताया है ?

आयुष्मन् जम्बू ! राजगृह नगर था । गुणशिलक चैत्य था । राजा श्रेणिक था । स्वामी का पदार्पण हुआ । परिषद् नीकली । उस काल और उस समय में शुक्र महाग्रह शुक्रावतंसक विमान में शुक्र सिंहासन पर बैठा था । ४००० सामानिक देवों आदि के साथ नृत्य गीत आदि दिव्य भोगों को भोगता हुआ विचरण कर रहा था आदि । वह चन्द्र के समान भगवान के समवसरण में आया । नृत्यविधि दिखाकर वापिस लौट गया ।

गौतमस्वामीने श्रमण भगवान महावीर से उस की दैविक ऋद्धि आदि के अन्तर्लीन होने के सम्बन्ध में पूछा। भगवान ने कूटाकार शाला के दृष्टान्त द्वारा गौतम का समाधान किया । गौतम स्वामी ने पुनः उसके पूर्वभव के सम्बन्ध में पूछा ।

गौतम ! उस काल और समय में वाराणसी नगरी थी । सोमिल नामक माहण था । वह धन-धान्य आदि से संपन्न-समृद्ध यावत् अपरिभूत था । ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद इन चार वेदों, पाँचवे इतिहास, छठ्ठे निघण्टु नामक कोश का तथा सांगोपांग रहस्य सहित वेदों का सारक, वारक, धारक, पारक, वेदों के षट्-अंगों में, एवं षष्ठितंत्र में विशारद था । गणितशास्त्र, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्दशास्त्र, निरुक्तशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र तथा दूसरे बहुत से ब्राह्मण और परिव्राजकों सम्बन्धी नीति और दर्शनशास्त्र आदि में अत्यन्त निष्णात था । पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व प्रभु पधारे । परिषद् नीकली और पर्युपासना करने लगी ।

सोमिल ब्राह्मण को यह संवाद सूनकर इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ–पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व प्रभु पूर्वानुपूर्वी के क्रम से गमन करते हुए यावत् आम्रशा-लवन में विराज रहे हैं । अतएव मैं जाऊं और अर्हत् पार्श्वप्रभु के सामने उपस्थित होऊं एवं उनसे यह तथा इस प्रकार के अर्थ हेतु, प्रश्न, कारण और व्याख्या पूछूँ ।

तत्पश्चात् सोमिल घर से नीकला और भगवान की सेवा में पहुँचकर पूछा–भगवन् ! आपकी यात्रा चल रही है ? यापनीय है ? अव्याबाध है ? और आपका प्रासुक विहार हो रहा है ? आपके लिए सरिसव मास कुलत्थ भक्ष्य हैं या अभक्ष्य हैं? आप एक हैं? यावत् सोमिल संबुद्ध हुआ और श्रावक धर्म को अंगीकार करके वापिस लौट गया । तदनन्तर वह सोमिल ब्राह्मण किसी समय असाधु दर्शन के कारण एवं निर्ग्रन्थ श्रमणों की पर्युपासना नहीं करने से–मिथ्यात्व पर्यायों के प्रवर्धमान होने से तथा सम्यक्त्व पर्यायों के परिहीयमान होने से मिथ्यात्व भाव को प्राप्त हुआ

इसके बाद किसी एक समय मध्यरात्रि में अपनी कौटुम्बिक स्थिति पर विचार करते हुए उस सोमिल ब्राह्मण को यह और इस प्रकार का आन्तरिक यावत् मानसिक संकल्प उत्पन्न हुआ–मैं वाराणसी नगरी का रहनेवाला और अत्यन्त शुद्ध ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ हूँ । मैंने व्रतों को अंगीकार किया, वेदाध्ययन किया, पत्नी को लाया–कुलपरंपरा की वृद्धि के लिए पुत्रादि संतान को जन्म दिया, समृद्धियों का संग्रह किया–अर्थोपार्जन किया, पशुबंध किया, यज्ञ किए, दक्षिणा दी, अतिथिपूजा–किया, अग्नि में हवन किया–आहुति दी, यूप स्थापित किये, इत्यादि गृहस्थ सम्बन्धी कार्य किये ।

लेकिन अब मुझे यह उचित है कि कल रात्रि के प्रभात रूप में परिवर्तित हो जाने पर, जब कमल विकसित हो जाएं, प्रभात पाण्डुर-श्वेत वर्ण का हो जाए, लाल अशोक, पलाशपुष्प, तोते की चोंच, चिरमी के अर्धभाग, बंधुजीवकपुष्प, कबूतर के पैर, कोयल के नेत्र, जसद के पुष्प, जाज्वल्यमान अग्नि, स्वर्णकलश एवं हिंगुलकसमूह की लालीमा से भी अधिक रक्तिम श्री से सुशोभित सूर्य उदित हो जाए और उसकी किरणों के फैलने से अंधकार विनष्ट हो जाए, सूर्य रूपी कुंकुम से विश्व व्याप्त हो जाए, नेत्रों के विषय का प्रचार होने से विकसित होनेवाला लोक स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगे, तब वाराणसी नगरी के बाहर बहुत से आम्र-उद्यान लगवाऊं, इसी प्रकार से मातुलिंग, बिल्व, कविठ्ठ, चिंचा और फूलों की वाटिकाएं लगवाऊं ।'

तत्पश्चात् वे बहुत से आम के बगीचे यावत् फूलों के बगीचे अनुक्रम से संरक्षण, संगोपन और संवर्धन किये जाने से दर्शनीय बगीचे बन गये । श्यामल, श्यामल आभावाले यावत् रमणीय महामेघों के समूह के सदृश होकर पत्र, पुष्प, फल एवं अपनी हरी-भरी श्री से अतीव-अतीव शोभायमान हो गये ।

इसके बाद पुनः उस सोमिल ब्राह्मण को किसी अन्य समय मध्यरात्रि में कौटुम्बिक स्थिति का विचार करते हुए इस प्रकार का यह आन्तरिक यावत् मनःसंकल्प उत्पन्न हुआ–वाराणसी नगरी वासी मैं सोमिल ब्राह्मण अत्यन्त शुद्ध–कुल में उत्पन्न हुआ । मैंने व्रतों का पालन किया, वेदों का अध्ययन आदि किया यावत् यूप स्थापित किये और इसके बाद वाराणसी नगरी के बाहर बहुत से आम के बगीचे यावत् फूलों के बगीचे लगवाए ।

लेकिन अब मुझे यह उचित है कि कल यावत् तेज सहित सूर्य के प्रकाशित होने पर बहुत से लोहे के कड़ाह, कुड़छी एवं तापसों के योग्य तांबे के पात्रों–घड़वाकर तथा विपुल मात्रा में अशन-पान-खादिम-स्वादिम भोजन बनवाकर मित्रों, जातिबांधवों, स्वजनों, सम्बन्धियों और परिचित जनों को आमंत्रित कर उन का विपुल अशन-पान-खादिम-स्वादिम, वस्त्र, गंध, माला एवं अलंकारों से सत्कार-सन्मान करके उन्हीं के सामने ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब का भार सौंपकर तथा मित्रों-जाति-बंधुओं आदि परिचितों और ज्येष्ठपुत्र से पूछकर उन बहुत से लोहे के कड़ाहे, कुड़छी आदि तापसों के पात्र लेकर गंगातटवासी वानप्रस्थ तापस हैं, जैसे कि–

होत्रिक, पोत्रिक, कौत्रिक, यात्रिक, श्राद्धकिन, स्थालकिन, हुम्बउट्ठ, दन्तोदूखलिक, उन्मज्जक, समज्जक, निमज्जक, संप्रक्षालक, दक्षिणकूल वासी, उत्तरकूल वासी, शंखध्मा, कूलध्मा, मृगलब्धक, हस्तीतापस, उद्दण्डक, दिशाप्रोक्षिक, वल्कवासी, बिलवासी, जलवासी, वृक्षमूलिक, जलभक्षी, वायुभक्षी, शैवालभक्षी, मूलाहारी, कंदाहारी, त्वचाहारी, पत्राहारी, पुष्पाहारी, बीजाहारी, विनष्ट कन्द, मूल, त्वचा, पत्र, पुष्प, फल को खानेवाले, जलाभिषेक से शरीर कठिन–बनानेवाले हैं तथा आतापना और पंचाग्नि ताप से अपनी देह को अंगारपक्व और कंदुपक्व जैसी बनाते हुए समय यापन करते हैं ।

इन तापसोंमें से मैं दिशाप्रोक्षिक तापसोंमें दिशाप्रोक्षिक रूप से प्रव्रजित होऊं और इस प्रकार का अभिग्रह अंगीकार करूँगा–'यावज्जीवन के लिए निरंतर षष्ठ-षष्ठभक्त पूर्वक दिशा चक्रवाल तपस्या करता हुआ सूर्य के अभिमुख भुजाएं उठाकर आतापनाभूमि में आतापना लूँगा ।' संकल्प करके यावत् कल जाज्वल्यमान सूर्य के प्रकाशित होने पर बहुत से लोह-कड़ाहा आदि को लेकर यावत् दिशाप्रोक्षिक तापस के रूप में प्रव्रजित हो गया। प्रव्रजित होने के साथ अभिग्रह अंगीकार करके प्रथम षष्ठक्षपण तप अंगीकार करके विचरने लगा ।

तत्पश्चात् ऋषि सोमिल ब्राह्मण प्रथम षष्ठक्षपण के पारणे के दिन आतापना भूमि से नीचे ऊतरे । फिर उसने वल्कल वस्त्र पहने और जहाँ अपनी कुटियाँ थी, वहाँ आये । वहाँ से–किढिण बांस की छबड़ी और कावड़ को लिया, पूर्व दिशा का पूजन किया और कहा–हे पूर्व दिशा के लोकपाल सोम महाराज ! प्रस्थान में प्रस्थित हुए मुझ सोमिल ब्रह्मर्षी की रक्षा करें ओर यहाँ जो भी कन्द, मूल, छाल, पत्ते, पुष्प, फूल, बीज और हरी वनस्पतियाँ हैं, उन्हें लेने की आज्ञा दें।' यों कहकर सोमिल ब्रह्मर्षी पूर्व दिशा की ओर गया और वहाँ जो भी कन्द, मूल, यावत् हरी वनस्पति आदि थी उन्हें ग्रहण किया और कावड़ में रखी, वांस की छबड़ी में भर लिया । फिर दर्भ, कुश तथा वृक्ष की शाखाओं को मोड़कर तोड़े हुए पत्ते और समिधाकाष्ठ लिए । अपनी कुटियाँ पे लाये । वेदिका का प्रमार्जन किया, उसे लीपकर शुद्ध किया। तदनन्तर डाभ और कलश हाथ में लेकर गंगा महानदी आए और उसके जल से देह शुद्ध की । अपनी देह पर पानी सींचा और आचमन आदि करके स्वच्छ और परम शुचिभूत होकर देव और पितरों संबंधी कार्य सम्पन्न करके डाभ सहित कलश को हाथ में लिए गंगा महानदी के बाहर नीकले । कुटियाँ में आकर डाभ, कुश और बालू से वेदी का निर्माण किया, सर और अरणि तैयार की । अग्नि सुलगाई । तब उसमें समिधा डालकर और अधिक प्रज्वलित की और फिर अग्नि की दाहिनी ओर ये सात वस्तुएं रखीं–

सूत्र - ६

सकथ वल्कल, स्थान, शैयाभाण्ड, कमण्डलु, लकड़ी का डंडा और अपना शरीर । फिर मधु, घी और

चावलों का अग्नि में हवन किया और चरु तैयार किया तथा नित्य यज्ञ कर्म किया । अतिथिपूजा की और उस के बाद स्वयं आहार ग्रहण किया ।

सूत्र - ७

तत्पश्चात् उन सोमिल ब्रह्मर्षी ने दूसरा षष्ठक्षपण अंगीकार किया । पारणे के दिन भी आतापनाभूमि से नीचे ऊतरे, वल्कल वस्त्र पहने यावत् आहार किया, इतना विशेष है कि इस बार वे दक्षिण दिशा में गए और कहा–'हे दक्षिण दिशा के यम महाराज ! प्रस्थान के लिए प्रवृत्त सोमिल ब्रह्मर्षी की रक्षा करें और यहाँ जो कन्द, मूल आदि हैं, उन्हें लेने की आज्ञा दें, ऐसा कहकर दक्षिण में गमन किया । तदनन्तर उन सोमिल ब्रह्मर्षी ने तृतीय बेला किया । पारणे के दिन भी पूर्वोक्त सब विधि की । किन्तु पश्चिम दिशा की पूजा की ।

कहा–'हे पश्चिम दिशा के लोकपाल वरुण महाराज ! परलोक-साधना में प्रवृत्त मुझ सोमिल ब्रह्मर्षी की रक्षा करें ।' इत्यादि इसके बाद चतुर्थ बेला तप किया । पारणा के दिन पूर्ववत् सारी विधि की । विशेष यह है कि इस बार उत्तर दिशा की पूजा की और इस प्रकार प्रार्थना की–'हे उत्तर दिशा के लोकपाल वैश्रमण महाराज ! परलोकसाधना में प्रवृत्त मुझ सोमिल ब्रह्मर्षी की रक्षा करें ।' इत्यादि यावत् उत्तर दिशा का अवलोकन किया आदि। इस चारों दिशाओं का वर्णन, आहार किया तक का वृत्तान्त पूर्ववत् जानना ।

इसके बाद किसी समय मध्यरात्रि में अनित्य जागरण करते हुए उन सोमिल ब्रह्मर्षी के मन में इस प्रकार का यह आन्तरिक विचार उत्पन्न हुआ–'मैं वाराणसी नगरी का रहने वाला, अत्यन्त उच्चकुल में उत्पन्न सोमिल ब्रह्मर्षी हूँ । मैंने गृहस्थाश्रम में रहते हुए व्रत पालन किया है, यावत् यूप-गड़वाए । इसके बाद आम के यावत् फूलों के बगीचे लगवाए । तत्पश्चात् प्रव्रजित हुआ । प्रव्रजित होने पर षष्ठ-षष्ठभक्त तपःकर्म अंगीकार करके दिक् चक्रवाल साधना करता हुआ विचरण कर रहा हूँ । लेकिन अब मुझे उचित है कि कल सूर्योदय होते ही बहुत से दृष्ट –भाषित, पूर्व संगतिक, और पर्यायसंगतिक, तापसों से पूछकर और आश्रमसंश्रित अनेक शत जनों को वचन आदि से संतुष्ट कर और उनसे अनुमति लेकर वल्कल वस्त्र पहनकर, कावड़ की छबड़ी में अपने भाण्डोपकरणों को लेकर तथा काष्ठमुद्रा से मुख को बाँधकर उत्तराभिमुख होकर उत्तर दिशा में महाप्रस्थान करूँ ।'

इस प्रकार विचार करने के पश्चात् कल यावत् सूर्य के प्रकाशित होने पर उन्होंने सभी दृष्ट, भाषित, पूर्वसंगतिक और तापस पर्याय के साथियों आदि से पूछकर तथा आश्रमस्थ अनेक शत-प्राणियों को संतुष्ट कर अंत में काष्ठमुद्रा से मुख को बाँधा । इस प्रकार का अभिग्रह लिया–चाहे वह जल हो या स्थल हो अथवा नीचा प्रदेश, पर्वत हो अथवा विषम भूमि, गड्ढा हो या गुफा, इन सब में से जहाँ कहीं भी प्रस्खलित होऊं या गिर जाऊं वहाँ से मुझे उठना नहीं कल्पता है ।

तत्पश्चात् उत्तराभिमुख होकर महाप्रस्थान के लिए प्रस्थित वह सोमिल ब्रह्मर्षी उत्तर दिशा की ओर गमन करते हुए अपराह्न काल में जहाँ सुन्दर अशोक वृक्ष था, वहाँ आए । अपना कावड़ रखा । अनन्तर वेदिका साफ की, उसे लीप-पोत कर स्वच्छ किया, फिर डाभ सहित कलश को हाथ में लेकर जहाँ गंगा महानदी थी, वहाँ आए और शिवराजर्षि के समान उस गंगा महानदी में स्नान आदि कृत्य कर वहाँ से बाहर आए । फिर शर और अरणि बनाई, अग्नि पैदा की इत्यादि । अग्नियज्ञ करके काष्ठमुद्रा से मुख को बाँधकर मौन होकर बैठ गये ।

तदनन्तर मध्यरात्रि के समय सोमिल ब्रह्मर्षी के समक्ष एक देव प्रकट हुआ । उस देव ने सोमिल ब्रह्मर्षी से कहा–'प्रव्रजित सोमिल ब्राह्मण ! तेरी यह प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है ।' उस देव ने दूसरी और तीसरी बार भी ऐसा ही कहा । किन्तु सोमिल ब्राह्मण ने उस देव की बात का आदर नहीं किया–यावत् मौन ही रहे । इसके बाद उस सोमिल ब्रह्मर्षि द्वारा अनादृत वह देव वापिस लौट गया । तत्पश्चात् कल यावत् सूर्य के प्रकाशित होने पर वल्कल वस्त्रधारी सोमिल ने कावड़, भाण्डोपकरण आदि लेकर काष्ठमुद्रा से मुख को बाँधा । बाँधकर उत्तराभिमुख हो उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान कर दिया ।

इसके बाद दूसरे अपराह्न काल के अंतिम प्रहर में सोमिल ब्रह्मर्षी जहाँ सप्तपर्ण वृक्ष था, वहाँ आये ।

कावड़ को रखा वेदिका–को साफ किया, इत्यादि पूर्ववत् । तब मध्यरात्रि में सोमिल ब्रह्मर्षी के समक्ष पुनः देव प्रकट हुआ और आकाश में स्थित होकर पूर्ववत् कहा परन्तु सोमिल ने उस देव की बात पर कुछ ध्यान नहीं दिया । यावत् वह देव पुनः वापिस लौट गया । इसके बाद वल्कल वस्त्रधारी सोमिल ने सूर्य के प्रकाशित होने पर अपने कावड़ उपकरण आदि लिए । काष्ठमुद्रा से मुख को बाँधा और मुख बाँधकर उत्तर की ओर मुख करके उत्तर दिशा में चल दिये । तदनन्तर वह सोमिल ब्रह्मर्षी तीसरे दिन अपराह्न काल में जहाँ उत्तम अशोक वृक्ष था, वहाँ आए । कावड़ रखी । बैठने के लिए वेदी बनाई और दर्भयुक्त कलश को लेकर गंगा महानदी में अवगाहन किया । अग्नि-हवन आदि किया फिर काष्ठमुद्रा से मुख को बाँधकर मौन बैठ गए ।

तत्पश्चात् मध्यरात्रि में सोमिल के समक्ष पुनः एक देव प्रकट हुआ और उसने उसी प्रकार कहा–'हे प्रव्रजित सोमिल ! तेरी यह प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है ।' यावत् वह देव वापिस लौट गया । इसके बाद सूर्योदय होने पर वह वल्कल वस्त्रधारी सोमिल कावड़ और पात्रोपकरण लेकर यावत् काष्ठमुद्रा से मुख को बाँधकर उत्तराभिमुख होकर उत्तर दिशा की ओर चल दिया ।

तदनन्तर चलते-चलते सोमिल ब्रह्मर्षी चौथे दिवस के अपराह्न काल में जहाँ वट वृक्ष था, वहाँ आए । नीचे कावड़ रखी । इत्यादि पूर्ववत् । मध्यरात्रि के समय पुनः सोमिल के समक्ष वह देव प्रकट हुआ और उसने कहा–'सोमिल ! तुम्हारी प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है ।' ऐसा कहकर वह अन्तर्धान हो गया । रात्रि के बीतने के बाद और जाज्वल्यमान तेजयुक्त सूर्य के प्रकाशित होने पर वह वल्कल वस्त्रधारी वह यावत् उत्तर दिशा में चल दिए ।

तत्पश्चात् वह सोमिल ब्रह्मर्षी पाँचवे दिन के चौथे प्रहर में जहाँ उदुम्बर का वृक्ष था, वहाँ आए । कावड़ रखी । यावत् मौन होकर बैठ गए । मध्यरात्रि में पुनः सोमिल ब्राह्मण के समीप एक देव प्रकट हुआ और कहा–'हे सोमिल! तुम्हारी यह प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है ।' इसके बाद देव ने दूसरी और तीसरी बार भी इसी प्रकार कहा–तब सोमिल ने देव से पूछा–'देवानुप्रिय ! मेरी प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या क्यों है ?'

देव ने कहा–तुमने पहले पुरुषादानीय पार्श्व अर्हत् से पंच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार का श्रावकधर्म अंगीकार किया था । किन्तु इसके बाद सुसाधुओं के दर्शन उपदेश आदि का संयोग न मिलने और मिथ्यात्व पर्यायों के बढ़ने से अंगीकृत श्रावकधर्म को त्याग दिया । यावत् तुमने दिशाप्रोक्षिक प्रव्रज्या धारण की । यावत् जहाँ अशोक वृक्ष था, वहाँ आए और कावड़ रख वेदी आदि बनाई । यावत् मध्यरात्रि के समय मैं तुम्हारे समीप आया और तुम्हें प्रतिबोधित किया–'हे सोमिल ! तुम्हारी यह प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है ।' किन्तु तुमने उस पर ध्यान नहीं दिया और मौन ही रहे । इस प्रकार चार दिन तक समझाया, आज पाँचवे दिवस चौथे प्रहर में इस उदुम्बर वृक्ष के नीचे आकर तुमने अपन कावड़ रखा । यावत् तुम मौन होकर बैठ गए । इस प्रकार से हे देवानुप्रिय! तुम्हारी यह प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है ।

यह सब सूनकर सोमिल ने देव से कहा–'अब आप ही बताइए कि मैं कैसे सुप्रव्रजित बनूँ ?' देव ने सोमिल ब्राह्मण से कहा–'देवानुप्रिय ! यदि तुम पूर्व में ग्रहण किए हुए पाँच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत रूप श्रावकधर्म को स्वयमेव स्वीकार करके विचरण करो तो तुम्हारी यह प्रव्रज्या सुप्रव्रज्या होगी । इसके बाद देव ने सोमिल ब्राह्मण को वन्दन-नमस्कार किया और अन्तर्धान हो गया । पश्चात् सोमिल ब्रह्मर्षी देव के कथनानुसार पूर्व में स्वीकृत पंच अणुव्रतों को अंगीकार करके विचरण करने लगे ।

तत्पश्चात् सोमिल ने बहुत से चतुर्थभक्त, षष्ठभक्त, अष्टमभक्त, यावत् अर्धमासक्षपण, मासक्षपण रूप विचित्र तपःकर्म से अपनी आत्मा को भावित करते हुए–श्रमणोपासक पर्याय का पालन किया । अंत में अर्ध-मासिक संलेखना द्वारा आत्मा की आराधना कर और तीस भोजनों का अनशन द्वारा त्याग कर किन्तु पूर्वकृत उस पापस्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण न करके सम्यक्त्व की विराधना के कारण कालमास में काल किया ।

शुक्रावतंसक विमान की उपपातसभा में स्थित देवशैया पर यावत् अंगुल के असंख्यातवें भाग की जघन्य अवगाहना से शुक्रमहाग्रह देव के रूप में जन्म लिया । वह शुक्रमहाग्रह देव यावत् पाँचों पर्याप्तियों से पर्याप्त भाव

को प्राप्त हुआ ।

–हे गौतम ! इस प्रकार से उस शुक्रमहाग्रह देव ने वह दिव्य देवऋद्धि, द्युति यावत् दिव्य प्रभाव प्राप्त किया है । उसकी वहाँ एक पल्योपम की स्थिति है । भदन्त ! वह शुक्रमहाग्रह देव आयु, भव और स्थिति का क्षय होने के अनन्तर उस देवलोक से च्यवन कर कहाँ जाएगा ? वह शुक्रमहाग्रह देव आयुक्षय, भवक्षय और स्थिति क्षय के अनन्तर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होगा, यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेगा ।

आयुष्मन् जम्बू ! इस प्रकार श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त महावीर ने पुष्पिका के तृतीय अध्ययन में इस भाव का निरूपण किया है, ऐसा मैं कहता हूँ ।

अध्ययन-३-का मुनि दीपरत्नसागरकृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

अध्ययन-४-बहुपुत्रिका

सूत्र - ८

भगवन् ! यदि श्रमण यावत् निर्वाणप्राप्त भगवान महावीर ने पुष्पिका के तृतीय अध्ययन का यह भाव निरूपण किया है तो भदन्त ! चतुर्थ अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

हे जम्बू ! उस काल और उस समय में राजगृह नगर था । गुणशिलक चैत्य था । राजा श्रेणिक था । स्वामी का पदार्पण हुआ । परिषद् नीकली । उस काल और उस समय में सौधर्मकल्प के बहुपुत्रिक विमान की सुधर्मासभा में बहुपुत्रिका देवी बहुपुत्रिक सिंहासन पर ४००० सामानिक देवियों तथा ४००० महत्तरिका देवियों के साथ सूर्याभदेव के समान नानाविध दिव्य भोगों को भोगती हुई विचरण कर रही थी ।

उसने अपने विपुल अवधिज्ञान से इस केवलकल्प जम्बूद्वीप को देखा और भगवान महावीर को देखा । सूर्याभ देव के समान यावत् नमस्कार करके अपने उत्तम सिंहासन पर पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठ गई । फिर सूर्याभदेव के समान उसने अपने आभियोगिक देवों को बुलाया और उन्हें सुस्वरा घंटा बजाने की आज्ञा दी । देव-देवियों को भगवान के दर्शनार्थ चलने की सूचना दी । पुनः आभियोगिक देवों को बुलाया और विमान की विकुर्वणा करने की आज्ञा दी । वह यान-विमान १००० योजन विस्तीर्ण था । सूर्याभदेव के समान वह अपनी समस्त ऋद्धि-वैभव के साथ यावत् उत्तर दिशा के निर्याणमार्ग से नीकलकर १००० योजन ऊंचे वैक्रिय शरीर को बनाकर भगवान के समवसरण में उपस्थित हुई । भगवान ने धर्मदेशना दी ।

पश्चात् उस बहुपुत्रिका देवी ने अपनी दाहिनी भुजा पसारी–१०८ देवकुमारों की ओर बायीं भुजा फैलाकर १०८ देवकुमा-रिकाओं की विकुर्वणा की । इसके बाद बहुत से दारक-दारिकाओं तथा डिम्भक-डिम्भिकाओं की विकुर्वणा की तथा सुर्याभ देव के समान नाट्य-विधियों को दिखाकर वापिस लौट गई ।

गौतम स्वामी ने भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया और प्रश्न किया–भगवन् ! उस बहुपुत्रिका देवी की वह दिव्य देवऋद्धि, द्युति और देवानुभाव कहाँ गया ? गौतम ! वह देव-ऋद्धि आदि उसी के शरीर से नीकली थी और उसी के शरीर में समा गई ।

गौतमस्वामी ने पुनः पूछा–भदन्त ! उस बहुपुत्रिका देवी को वह दिव्य देव-ऋद्धि आदि कैसे मिली, कैसे उस के उपभोग में आई ? गौतम ! उस काल और उस समय वाराणसी नगरी थी । आम्रशालवन चैत्य था । भद्र सार्थवाह रहता था, जो धन-धान्यादि से समृद्ध यावत् दूसरों से अपरिभूत था । भद्र सार्थवाह की पत्नी सुभद्रा थी । वह अतीव सुकुमाल अंगोपांगवाली थी, रूपवती थी । किन्तु वन्ध्या होने से उसने एक भी सन्तान को जन्म नहीं दिया । वह केवल जानु और कूर्पर की माता थी । किसी एक समय मध्यरात्रि में पारिवारिक स्थिति का विचार करते हुए सुभद्रा को इस प्रकार का मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ–'मैं भद्र सार्थवाह के साथ विपुल मानवीय भोगों को भोगती हुई समय व्यतीत कर रही हूँ, किन्तु आज तक मैंने एक भी बालक या बालिका का प्रसव नहीं किया है । वे माताएं धन्य हैं यावत् पुण्यशालिनी हैं, उन माताओं ने अपने मनुष्यजन्म और जीवन का फल भलीभाँति प्राप्त किया है, जो अपनी निज की कुक्षि से उत्पन्न, स्तन के दूध के लोभी, मन को लुभानेवाली वाणी का उच्चारण करनेवाली, तोतली बोली बोलनेवाली, स्तन मूल और कांख के अंतराल में अभिसरण करनेवाली सन्तान को दूध पिलाती हैं । उसे गोद में बिठलाता है, मधुर-मधुर संलापों से अपना मनोरंजन करती हैं । लेकिन मैं ऐसी भाग्यहनी, पुण्यहीन हूँ कि संतान सम्बन्धी एक भी सुख मुझे प्राप्त नहीं है ।' इस प्रकार के विचारों से निरुत्साह–होकर यावत् आर्त्तध्यान करने लगी ।

उस काल और उस समय में ईर्यासमिति यावत् उच्चारण-प्रस्रवण-श्लेष्म-सिंघाणपरिष्ठापना-समिति से समित, मनोगुप्ति, यावत् कायगुप्ति से युक्त, इन्द्रियों का गोपन करनेवाली, गुप्त ब्रह्मचारिणी, बहुश्रुता, शिष्याओं के बहुत बड़े परिवारवाली सुव्रता आर्या विहार करती हुई वाराणसी नगरी आई । कल्पानुसार यथायोग्य अवग्रह आज्ञा लेकर संयम और तप से आत्मा को परिशोधित करती हुई विचरने लगी ।

उन सुव्रता आर्या का एक संघाड़ा वाराणसी नगरी के सामान्य, मध्यम और उच्च कुलों में सामुदायिक भिक्षाचर्या के लिए परिभ्रमण करता हुआ भद्र सार्थवाह के घर में आया । तब सुभद्रा सार्थवाही हर्षित और संतुष्ट होती हुई शीघ्र ही अपने आसन से उठकर खड़ी हुई । सात-आठ डग उनके सामने गई और वन्दन-नमस्कार किया फिर विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम आहार से प्रतिलाभित कर इस प्रकार कहा–आर्याओ ! मैं भद्र सार्थवाह के साथ विपुल भोगोपभोग भोग रही हूँ, मैंने आज तक एक भी संतान का प्रसव नहीं किया है । वे माताएं धन्य हैं, यावत् मैं अधन्या पुण्यहीना हूँ कि उनमें से एक भी सुख प्राप्त नहीं कर सकी हूँ ।

देवानुप्रियों ! आप बहुत ज्ञानी हैं, और बहुत से ग्रामों, आकरों, नगरों यावत् देशों में घूमती हैं । अनेक राजा, ईश्वर यावत् सार्थवाह आदि के घरों में भिक्षा के लिए प्रवेश करती हैं । तो क्या कहीं कोई विद्याप्रयोग, मंत्रप्रयोग, वमन, विरेचन, वस्तिकर्म, औषध अथवा भेषज ज्ञात किया है, देखा-पढ़ा है जिससे मैं बालक या बालिका का प्रसव कर सकूँ ?

तब उन आर्यिकाओं ने सुभद्रा सार्थवाही से कहा–देवानुप्रिय ! हम ईर्यासमिति आदि समितिओं से समित, तीन गुप्तिओं से गुप्त, यावत् श्रमणियाएं हैं । हमको ऐसी बातों का सूनना भी नहीं कल्पता है तो फिर हम इनका उपदेश कैसे कर सकती हैं ? किन्तु हम तुम्हें केवलिप्ररूपित धर्मोपदेश सूना सकती हैं । इसके बाद उन आर्यिकाओं से धर्मश्रवण कर उसे अवधारित कर उस सुभद्रा सार्थवाही ने हृष्ट-तुष्ट हो उन आर्याओं को तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की । दोनों हाथ जोड़कर वंदन-नमस्कार किया ।

उसने कहा–मैं निर्ग्रन्थप्रवचन पर श्रद्धा करती हूँ, विश्वास करती हूँ, रुचि करती हूँ । आपने जो उपदेश दिया है, वह तथ्य है, सत्य है, अवितथ है । यावत् मैं श्रावकधर्म को अंगीकार करना चाहती हूँ । देवानुप्रिये ! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो वैसा करो किन्तु प्रमाद मत करो। तब उसने आर्यिकाओं से श्रावकधर्म अंगीकार किया । उन आर्यिकाओं को वन्दन-नमस्कार किया । वह सुभद्रा सार्थवाही श्रमणोपासिका होकर श्रावकधर्म पालती हुई यावत् विचरने लगी ।

इस के बाद उस सुभद्रा श्रमणोपासिका को किसी दिन मध्यरात्रि के समय कौटुम्बिक स्थिति पर विचार करते हुए इस प्रकार का आन्तरिक मनःसंकल्प यावत् विचार समुत्पन्न हुआ–''मैं भद्र सार्थवाह के साथ विपुल भोगोपभोगों को भोगती हुई समय व्यतीत कर रही हूँ किन्तु मैंने अभी तक एक भी दारक या दारिका को जन्म नहीं दिया है । अतएव मुझे यह उचित है कि मैं कल यावत् जाज्वल्यमान तेज सहित सूर्य के प्रकाशित होने पर भद्र सार्थवाह से अनुमति लेकर सुव्रता आर्यिका के पास गृह त्यागकर यावत् प्रव्रजित हो जाऊं ।

भद्र सार्थवाह को दोनों हाथ जोड़ यावत् इस प्रकार बोली–तुम्हारे साथ बहुत वर्षों से विपुल भोगों को भोगती हुई समय बीता रही हूँ, किन्तु एक भी बालक या बालिका को जन्म नहीं दिया है । अब मैं आप देवानुप्रिय की अनुमति प्राप्त करके सुव्रता आर्यिका के पास यावत् प्रव्रजित–दीक्षित होना चाहती हूँ । तब भद्र सार्थवाह ने कहा–तुम अभी मुंडित होकर यावत् गृहत्याग करके प्रव्रजित मत होओ, मेरे साथ विपुल भोगोपभोगों का भोग करो और भोगों को भोगने के पश्चात् यावत् अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करना ।

तब सुभद्रा सार्थवाही ने भद्र सार्थवाह के वचनों का आदर नहीं किया–दूसरी बार और फिर तीसरी बार भी सुभद्रा सार्थवाही ने यहीं कहा–आपकी आज्ञा लेकर मैं सुव्रताआर्या के पास प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहती हूँ । जब भद्र सार्थवाह अनुकूल और प्रतिकूल बहुत सी युक्तियों, प्रज्ञप्तियों, संज्ञप्तियों और विज्ञप्तियों से उसे समझाने-बुझाने, संबोधित करने और मनाने में समर्थ नहीं हुआ तब ईच्छा न होने पर भी लाचार होकर सुभद्रा को दीक्षा लेने की आज्ञा दे दी ।

तत्पश्चात् भद्र सार्थवाह ने विपुल परिमाण में अशन-पान-खादिम-स्वादिम भोजन तैयार करवाया और अपने सभी मित्रों, जातिबांधवों, स्वजनों, सम्बन्धी-परिचितों को आमन्त्रित किया । उन्हें भोजन कराया यावत् उन का सत्कार-सम्मान किया । फिर स्नान की हुई, कौतुक-मंगल प्रायश्चित्त आदि से युक्त, सभी अलंकारों से विभूषित

सुभद्रा सार्थवाही को हजार पुरुषों द्वारा वहन की जाने योग्य पालकी में बैठाया और उसके बाद वह सुभद्रा सार्थवाही जहाँ सुव्रता आर्या का उपाश्रय था वहाँ आई । आकर उस पुरुषसहस्रवाहिनी पालकी को रोका और पालकी से ऊतरी । भद्र सार्थवाह सुभद्रा सार्थवाही को आगे करके सुव्रता आर्या के पास आया और आकर उसने वन्दन-नमस्कार किया । निवेदन किया–

'देवानुप्रिये ! मेरी यह सुभद्रा भार्या मुझे अत्यन्त इष्ट और कान्त है यावत् इसको वात-पित्त-कफ और सन्निपातजन्य विविध रोग-आतंक आदि स्पर्श न कर सके, इसके लिए सर्वदा प्रयत्न करता रहा । लेकिन अब यह संसार के भय से उद्विग्न एवं जन्म-स्मरण से भयभीत होकर आप के पास यावत् प्रव्रजित होने के लिए तत्पर है । इसलिए मैं आपको यह शिष्या रूप भिक्षा दे रहा हूँ । आप देवानुप्रिया इस शिष्या-भिक्षा को स्वीकार करें ।' भद्र सार्थवाह के इस प्रकार निवेदन करने पर सुव्रता आर्या ने कहा–'देवानुप्रिये ! जैसा तुम्हें अनुकूल प्रतीत हो, वैसा करो, किन्तु इस मांगलिक कार्य में विलम्ब मत करो ।'

सुव्रता आर्या के इस कथन को सूनकर सुभद्रा सार्थवाही हर्षित एवं संतुष्ट हुई और उसमे स्वयमेव अपने हाथों से वस्त्र, माला और आभूषणों को ऊतारा । पंचमुष्टिक केशलोंच किया फिर जहाँ सुव्रता आर्या थीं, वहाँ आई। प्रदक्षिणापूर्वक वन्दन-नमस्कार किया । और बोली–यह संसार आदीप्त है, प्रदीप्त है, इत्यादि कहते हुए देवानन्दा के समान वह उन सुव्रता आर्या के पास प्रव्रजित हो गई और पाँच समितियों एवं तीन गुप्तियों से युक्त होकर इन्द्रियों का निग्रह करने वाली यावत् गुप्त ब्रह्मचारिणी आर्या हो गई ।

इसके बाद सुभद्रा आर्या किसी समय गृहस्थों के बालक-बालिकाओं में मूर्च्छित आसक्त हो गई–यावत् उन बालक-बालिकाओं के लिए अभ्यंगन, उबटन, प्रासुक जल, उन बच्चों के हाथ-पैर रंगने के लिए मेहंदी आदि रंजक द्रव्य, कंकण, अंजन, वर्णक, चूर्णक, खिलौने के लिए मिष्टान्न, खीर, दूध और पुष्प-माला आदि की गवेषणा करने लगी । उन गृहस्थों के दारक-दारिकाओं, कुमार-कुमारिकाओं, बच्चे-बच्चियों में से किसी की तेल-मालिश करती, किसी के उबटन लगाती, इसी प्रकार किसी को प्रासुक जल से स्नान कराती, पैरों को रंगती, ओठों को रंगती, काजल आंजती, तिलक लगाती, बिन्दी लगाती, झुलाती तथा किसी-किसी को पंक्ति में खड़ा करती, चंदन लगाती, सुगन्धित चूर्ण लगाती, खिलौने देती, खाने के लिए मिष्टान्न देती, दूध पिलाती, किसी के कंठ में पहनी हुई पुष्पमाला को उतारती, पैरों पर बैठाती तो किसी को जांघों पर बैठाती । किसी को टांगों पर, गोदी में, कमर पर, पीठ पर, छाती पर, कन्धों पर, मस्तक पर बैठाती और हथेलियों में लेकर हुलराती, लोरियाँ गाती हुई, पुचकारती हुई पुत्र की लालसा, पुत्री की वांछा, पोते-पोतियों की लालसा का अनुभव करती हुई अपना समय बीताने लगी ।

उस की ऐसी वृत्ति–देखकर सुव्रता आर्या ने कहा–देवानुप्रिये ! हम लोग संसार-विषयों से विरक्त, ईर्या-समिति आदि से युक्त यावत् गुप्त ब्रह्मचारिणी निर्ग्रन्थी श्रमणी हैं । हमें बालकों का लालन-पालन, आदि करना-कराना नहीं कल्पता है । लेकिन तुम गृहस्थों के बालकों में मूर्च्छित यावत् अनुरागिणी होकर उनका अभ्यंगत आदि करने रूप अकल्पनीय कार्य करती हो यावत् पुत्र-पौत्र आदि की लालसापूर्ति का अनुभव करती हो ।

अतएव तुम इस स्थान–की आलोचना करो यावत् प्रायश्चित्त लो । सुव्रता आर्या द्वारा इस प्रकार से अकल्पनीय कार्यों से रोकने के लिए समझाए जाने पर भी सुभद्रा आर्या ने उन सुव्रता आर्या के कथन का आदर नहीं किया–किन्तु उपेक्षा-पूर्वक अस्वीकार कर पूर्ववत् बाल-मनोरंजन करती रही ।

तब निर्ग्रन्थ श्रमणियाँ इस अयोग्य कार्य के लिए सुभद्रा आर्या की हीलना, निन्दा, खिंसा, गर्हा करतीं–और ऐसा करने से उसे बार-बार रोकतीं । उन सुव्रता आदि निर्ग्रन्थ श्रमणी आर्याओं द्वारा पूर्वोक्त प्रकार से हीलना आदि किए जाने और बार-बार रोकने–पर उस सुभद्रा आर्या को इस प्रकार का यावत् मानसिक विचार उत्पन्न हुआ–

'जब मैं अपने घर में थी, तब मैं स्वाधीन थी, लेकिन जब से मैं मुण्डित होकर गृह त्याग कर अनगारिक प्रव्रज्या से प्रव्रजित हुई हूँ, तब से मैं पराधीन हो गई हूँ । पहले जो निर्ग्रन्थ श्रमणियाँ मेरा आदर करती थी, मेरे साथ प्रेम-पूर्वक आलाप–संलाप करती थीं, वे आज न तो मेरा आदर करती हैं और न प्रेम से बोलती हैं । इसलिए मुझे

कल प्रातःकाल यावत् सूर्य के प्रकाशित होने पर पृथक् उपाश्रय में जाकर रहना उचित है ।' यावत् सूर्योदय होने पर सुव्रता आर्या को छोड़कर वह नीकल गई और अलग उपाश्रय में जाकर अकेली रहने लगी । तत्पश्चात् वह सुभद्रा आर्या, आर्याओं द्वारा नहीं रोके जाने से निरंकुश और स्वच्छन्दमति होकर गृहस्थों के बालकों में आसक्त–यावत्–उनकी तेल-मालिश आदि करती हुई पुत्र-पौत्रादि की लालसापूर्ति का अनुभव करती हुई समय बीताने लगी ।

तदनन्तर वह सुभद्रा पासत्था, पासत्थविहारी, अवसन्न, अवसन्नविहारी, कुशील कुशीलविहारी, संसक्त संसक्तविहारी और स्वच्छन्द तथा स्वच्छन्दविहारी हो गई । उसने बहुत वर्षों तक श्रमणी-पर्याय का पालन किया । अर्धमासिक संलेखना द्वारा आत्मा को परिशोधित कर, अनशन द्वारा तीस भोजनों को छोड़कर और अकरणीय पाप–स्थान–की आलोचना–किए बिना ही मरण करके सौधर्मकल्प के बहुपुत्रिका विमान की उपपातसभा में देवदूष्य से आच्छादित देवशैया पर अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण अवगाहना से बहुपुत्रिका देवी के रूप में उत्पन्न हुई । उत्पन्न होते ही वह बहुपुत्रिका देवी पाँच प्रकार की पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर देवी रूप में रहने लगी ।

गौतम ! इस प्रकार बहुपुत्रिका देवी ने वह दिव्य देव-ऋद्धि एवं देवद्युति प्राप्त की है यावत् उसके सन्मुख आई है । गौतम स्वामी ने पुनः पूछा–'भदन्त ! किस कारण से बहुपुत्रिका देवी को बहुपुत्रिका कहते हैं ?' 'गौतम ! जब-जब वह बहुपुत्रिका देवी देवेन्द्र देवराज शक्र के पास जाती तब-तब वह बहुत से बालक-बालिकाओं, बच्चे-बच्चियों की विकुर्वणा करती । जाकर उन देवेन्द्र-देवराज शक्र के समक्ष अपनी दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति एवं दिव्य देवानुभाव–प्रदर्शित करती । इसी कारण हे गौतम ! वह उसे 'बहुपुत्रिका देवी' कहते हैं ।

'भदन्त ! बहुपुत्रिका देवी की स्थिति कितने काल की है ?' 'गौतम ! चार पल्योपम है ।' 'भगवन् ! आयुक्षय, भवक्षय और स्थितिक्षय होने के अनन्तर बहुपुत्रिका देवी उस देवलोक से च्यवन करके कहाँ जाएगी ?' 'गौतम ! आयुक्षय आदि के अनन्तर बहुपुत्रिका देवी इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में विन्ध्य-पर्वत की तलहटी में बसे बिभेल सन्निवेश में ब्राह्मणकुल में बालिका रूप में उत्पन्न होगी । उस बालिका के माता-पिता ग्यारह दिन बीतने पर यावत् बारहवें दिन वे अपनी बालिका का नाम सोमा रखेंगे ।'

तत्पश्चात् वह सोमा बाल्यावस्था से मुक्त होकर, सज्ञानदशापन्न होकर युवावस्था आने पर रूप, यौवन एवं लावण्य से अत्यन्त उत्तम एवं उत्कृष्ट शरीरवाली हो जाएगी । तब माता-पिता उस सोमा बालिका को बाल्यावस्था को पार कर विषय-सुख से अभिज्ञ एवं यौवनावस्था में प्रविष्ट जानकर यथायोग्य गृहस्थोपयोगी उपकरणों, धन-आभूषणों और संपत्ति के साथ अपने भानजे राष्ट्रकूट को भार्या के रूप में देंगे ।

वह सोमा उस राष्ट्रकूट की इष्ट, कान्त, भार्या होगी यावत् वह सोमा की भाण्डकरण्डक के समान, तेलकेल्ला के समान, वस्त्रों के पिटारे के समान, रत्नकरण्डक के समान उसकी सुरक्षा का ध्यान रखेगा और उसको शीत, उष्ण, वात, पित्त, कफ एवं सन्निपातजन्य रोग और आतंक स्पर्श न कर सकें, इस प्रकार से सर्वदा चेष्टा करता रहेगा । तत्पश्चात् सोमा ब्राह्मणी राष्ट्रकूट के साथ विपुल भोगों को भोगती हुई प्रत्येक वर्ष एक युगल संतान को जन्म देकर सोलह वर्ष में बत्तीस बालकों का प्रसव करेंगी ।

तब वह बहुत से दारक-दारिकाओं, कुमार-कुमारिकाओं और बच्चे-बच्चियों में से किसी के उत्तान शयन करने से, किसी के चीखने-चिल्लाने से, जन्म-घूंटी आदि दवाई पिलाने से, घुटने-घुटने चलने से, पैरों पर खड़े होने में प्रवृत्त होने से, चलते-चलते गिर जाने से, स्तन को टटोलने से, दूध माँगने से, खिलौना माँगने से, मिठाई माँगने से, कूर माँगने से, इसी प्रकार पानी माँगने से, हँसने से, रूठ जाने से, गुस्सा करने से, झगड़ने से, आपस में मारपीट करने से, उसका पीछा करने से, रोने से, आक्रंदन करने से, विलाप करने से, छीना-छपटी करने से, कराहने से, ऊंघने से, प्रलाप करने से, पेशाब आदि करने से, उलटी करने से, छेरने से, मूतने से, सदैव उन बच्चों के मल-मूत्र वमन से लिपटे शरीरवाली तथा मैले-कुचैले कपड़ों से कांतिहीन यावत् अशुचि से सनी हुई होने से देखने में बीभत्स और अत्यन्त दुर्गन्धित होने के कारण राष्ट्रकूट के साथ विपुल कामभोगों को भोगने में समर्थ नहीं हो सकेगी ।

ऐसी अवस्था में किसी समय रात को पिछले प्रहर में अपनी और अपने कुटुम्ब की स्थिति पर विचार करते

हुए उस सोमा ब्राह्मणी को विचार उत्पन्न होगा–'मैं इन बहुत से अभागे, दुःखदायी एक साथ थोड़े-थोड़े दिनों के बाद उत्पन्न हुए छोटे-बड़े और नवजात बहुत से दारक-दारिकाओं यावत् बच्चे-बच्चियों में से यावत् उनके मल-मूत्र-वमन आदि से लिपटी रहने के कारण अत्यन्त दुर्गन्धमयी होने से राष्ट्रकूट के साथ भोगों का अनुभव नहीं कर पा रही हूँ । वे माताएं धन्य हैं यावत् उन्होंने मनुष्यजन्म और जीवन का सुफल पाया है, जो वंध्या हैं, प्रजननशीला नहीं होने से जानु-कूर्पूर की माता होकर सुरभि सुगंध से सुवासित होकर विपुल मनुष्य सम्बन्धी भोगोपभोगों को भोगती हुई समय बीताती हैं ।

सोमा ने जब ऐसा विचार किया कि उस काल और उसी समय ईर्या आदि समितिओं से युक्त यावत् बहुत-सी साध्वीयों के साथ सुव्रता नाम की आर्याएं उस बिभेल सन्निवेश में आएंगी और अनगारोचित अवग्रह लेकर स्थित होंगी ।

तदनन्तर उन सुव्रता आर्याओं का एक संघाड़ा बिभेल सन्निवेश के उच्च, सामान्य और मध्यम परिवारों में गृहसमुदानी भिक्षा के लिए घूमता हुआ राष्ट्रकूट के घर में प्रवेश करेगा । तब वह सोमा ब्राह्मणी उन आर्याओं को आते देखकर हर्षित और संतुष्ट होगी । शीघ्र ही अपने आसन से उठेंगी, सात-आठ डग उनके सामने आएगी । वंदन-नमस्कार करेगी और विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन से प्रतिलाभित करके कहेगी–'आर्याओ ! राष्ट्रकूट के साथ विपुल भोगों को भोगते हुए यावत् मैंने प्रतिवर्ष बालक-युगलों को जन्म देकर सोलह वर्ष में बत्तीस बालकों का प्रसव किया है । जिससे मैं उन दुर्जन्मा यावत् बच्चों के मल-मूत्र-वमन आदि से सनी होने के कारण अत्यन्त दुर्गन्धित शरीरवाली हो राष्ट्रकूट के साथ भोगोपभोग नहीं भोग पाती हूँ । आर्याओ ! मैं आप से धर्म सूनना चाहती हूँ । तब वे आर्याएं सोमा ब्राह्मणी को यावत् केवलिप्ररूपित धर्म का उपदेश सुनाएंगी ।

तत्पश्चात् सोमा ब्राह्मणी उन आर्यिकाओं से धर्मश्रवण कर और उसे हृदय में धारण कर हर्षित और संतुष्ट–यावत् विकसितहृदयपूर्वक उन आर्याओं को वंदन-नमस्कार करेगी । और कहेगी–मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करती हूँ यावत् उसे अंगीकार करने के लिए उद्यत हूँ । निर्ग्रन्थप्रवचन इसी प्रकार का है यावत् जैसा आपने प्रति-पादन किया है । किन्तु मैं राष्ट्रकूट से पूछूंगी । तत्पश्चात् आप देवानुप्रिय के पास मुंडित होकर प्रव्रजित होऊंगी ।

देवानुप्रिय ! जैसे सुख हो वैसा करो, किन्तु विलम्ब मत करो । तत्पश्चात् वह सोमा ब्राह्मणी राष्ट्रकूट के निकट जाकर दोनों हाथ जोड़ कहेंगी–मैंने आर्याओं से धर्मश्रवण किया है और वह धर्म मुझे ईच्छित है–यावत् रुचिकर लगा है । इसलिए आपकी अनुमति लेकर मैं सुव्रता आर्या से प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहती हूँ ।

तब राष्ट्रकूट कहेगा–अभी तुम मुंडित होकर यावत् घर छोड़कर प्रव्रजित मत होओ किन्तु अभी तुम मेरे साथ विपुल कामभोगों का उपभोग करो और भुक्तभोगी होने के पश्चात् यावत् गृहत्याग कर प्रव्रजित होना । राष्ट्रकूट के इस सुझाव को मानने के पश्चात् सोमा ब्राह्मणी स्नान कर, कौतुक मंगल प्रायश्चित्त कर यावत् आभरण-अलंकारों से अलंकृत होकर दासियों के समूह से घिरी हुई अपने घर से नीकलेगी । बिभेल सन्निवेश के मध्यभाग को पार करती हुई सुव्रता आर्याओं के उपाश्रय में आएगी । आकर सुव्रता आर्याओं को वंदन-नमस्कार करके उनकी पर्युपासना करेगी ।

तत्पश्चात् वे सुव्रता आर्या उस सोमा ब्राह्मणी को 'कर्म से जीव बद्ध होते हैं–इत्यादिरूप केवलिप्ररूपित धर्मोपदेश देंगी । तब वह सोमा ब्राह्मणी बारह प्रकार के श्रावक धर्म को स्वीकार करेगी और फिर सुव्रता आर्या को वंदन-नमस्कार करेगी । वापिस लौट जाएगी ।

तत्पश्चात् सोमा ब्राह्मणी श्रमणोपासिका हो जाएगी । वह जीव-अजीव पदार्थों के स्वरूप की ज्ञाता, पुण्य-पाप के भेद की जानकार, आस्रव-संवर-निर्जरा-क्रिया-अधिकरण तथा बंध-मोक्ष के स्वरूप को समझने में निष्णात, परतीर्थियों के कुतर्कों का खण्डन करने में स्वयं समर्थ होगी । देव, असुर, नाग, सुपर्ण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, गरुड़, गंधर्व, महोरग आदि देवता भी उसे निर्ग्रन्थप्रवचन से विचलित नहीं कर सकेंगे । निर्ग्रन्थप्रवचन पर श्रद्धा करेगी । आत्मोत्थान के सिवाय अन्य कार्यों में उसकी अभिलाषा नहीं रहेगी । धार्मिक-

आध्यात्मिक सिद्धान्तों के आशय के प्रति उसे संशय नहीं रहेगा । लब्धार्थ, गृहीतार्थ, विनिश्चितार्थ होने से उसकी अस्थि और मज्जा तक धर्मानुराग से अनुरंजित हो जाएगी ।

इसीलिए वह दूसरों को संबोधित करते हुए उद्घोषणा करेगी–आयुष्मन् ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही अर्थ है, परमार्थ है, इसके सिवाय अन्यतीर्थिकों का कथन कुगति-प्रापक होने से अनर्थ है । असद् विचारों से विहीन होने के कारण उसका हृदय स्फटिक के समान निर्मल होगा, निर्ग्रन्थ श्रमण भिक्षा के लिए सुगमता से प्रवेश कर सकें, अतः उसके घर का द्वार सर्वदा खुला होगा । सभी के घरों में उसका प्रवेश प्रीतिजनक होगा । चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णमासी को परिपूर्ण पौषधव्रत का सम्यक् प्रकार से परिपालन करते हुए श्रमण-निर्ग्रन्थों को प्रासुक एषणीय-निर्दोष आहार, पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक-आसन, वस्त्र, पात्र, कंबल, रजोहरण, औषध, भेषज से प्रतिलाभित करती हुई एवं यथाविधि ग्रहण किए हुए विविध प्रकार के शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान, पौषधोपवासों से आत्मा को भावित करती हुई रहेगी ।

सुव्रता आर्या किसी समय ग्रामानुग्राम में विचरण करती हुई यावत् पुनः बिभेल संनिवेश में आएंगी । तब वह सोमा ब्राह्मणी हर्षित एवं संतुष्ट हो, स्नान कर तथा अलंकारों से विभूषित हो पूर्व की तरह दर्शनार्थ नीकलेगी यावत् वंदन-नमस्कार करके धर्म श्रवण कर यावत् सुव्रता आर्या से कहेगी–मैं राष्ट्रकूट से पूछकर आपके पास मुंडित होकर प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहती हूँ । तब सुव्रता आर्या कहेंगी–देवानुप्रिये ! तुम्हें जिसमें सुख हो वैसा करो, किन्तु शुभ कार्य में विलम्ब मत करो ।

इसके बाद सोमा ब्राह्मणी उन सुव्रता आर्याओं को वंदन-नमस्कार करके जहाँ राष्ट्रकूट होगा, वहाँ आएगी । दोनों हाथ जोड़कर पूर्व के समान पूछेगी कि आपकी आज्ञा लेकर आनगारिक प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहती हूँ । इस बात को सूनकर राष्ट्रकूट कहेगा–देवानुप्रिये! जैसे तुम्हें सुख हो वैसा करो, इस के पश्चात् राष्ट्रकूट विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम चार प्रकार के भोजन बनवाकर अपने मित्र जाति-बांधव, स्वजन, संबन्धियों को आमंत्रित करेगा इत्यादि, पूर्वभव में सुभद्रा के समान यहाँ भी वह प्रव्रजित होगी और आर्या होकर ईर्यासमिति आदि समितियों एवं गुप्तियों से युक्त होकर यावत् गुप्त ब्रह्मचारिणी होगी ।

तदनन्तर वह सोमाआर्या सुव्रताआर्या से सामायिक आदि से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन करेगी । विविध प्रकार के बहुत से चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम, दशम, द्वादशभक्त आदि विचित्र तपःकर्म से आत्मा को भावित करती हुई बहुत वर्षों तक श्रमण-पर्याय का पालन करेगी ।

मासिक संलेखना से आत्मा शुद्ध कर, अनशन द्वारा साठ भोजनों को छोड़कर, आलोचना प्रतिक्रमणपूर्वक समाधिस्थ हो, मरण करके देवेन्द्र देवराज शक्र के सामानिक देव के रूप में उत्पन्न होगी । उस सोमदेव की दो सागरोपम की स्थिति होगी ।

तब गौतमस्वामी ने पूछा–'भदन्त ! वह सोम देव आयुक्षय, भवक्षय और स्थितिक्षय होने के अनन्तर देवलोक से च्यवकर कहाँ जाएगा ? 'हे गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्ध होगा यावत् सर्व दुःखों का अंत करेगा ।' 'आयुष्मन् जम्बू ! इस प्रकार से भगवान महावीर ने पुष्पिका के चतुर्थ अध्ययन का यह भाव निरूपण किया है । ऐसा मैं कहता हूँ ।'

अध्ययन-४-का मुनि दीपरत्नसागरकृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

अध्ययन-५-पूर्णभद्र

सूत्र - ९

भगवन् ! यदि श्रमण यावत् निर्वाणप्राप्त भगवान महावीर ने पुष्पिका नामक उपांग के चतुर्थ अध्ययन का यह भाव प्रतिपादन किया है तो भगवन् ! पंचम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

आयुष्मन् जम्बू ! उस काल और उस समय राजगृह नगर था । गुणशिलक चैत्य था । श्रेणिक राजा था । स्वामी पधारे । परिषद् दर्शन करने नीकली। उस काल और उस समय सौधर्मकल्प में पूर्णभद्र विमान की सुधर्मासभा में पूर्णभद्र सिंहासन पर आसीन होकर पूर्णभद्र देव सूर्याभदेव के समान विचर रहा था । उसने अवधिज्ञान से भगवान को देखा । भगवान की सेवा में उपस्थित हुआ, वन्दन नमस्कार करके यावत् बत्तीस प्रकार की नृत्यविधियों को प्रदर्शित कर वापिस लौट गया ।

तब गौतमस्वामी ने भगवान से उस देव की दिव्य देव-ऋद्धि आदि के विषय में पूछा । गौतम ! उस काल और उस समय इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में धन वैभव इत्यादि से समृद्धि–मणिपदिका नगरी थी । राजा चन्द्र था और ताराकीर्ण नाम का उद्यान था । उस नगरी में पूर्णभद्र नाम का एक सद्गृहस्थ रहता था, जो धन-धान्य इत्यादि से संपन्न था । उस काल और उस समय जाति एवं कुल से संपन्न यावत्, बहुश्रुत स्थविर भगवंत बहुत बड़े अन्तेवासी परिवार के साथ समवसृत हुए । जनसमूह धर्मदेशना श्रवण करने नीकला ।

पूर्णभद्र गाथापति उन स्थविरों के आगमन का वृत्तान्त जानकर यावत् भगवती–सूत्रोक्त गंगदत्त के समान गया यावत् उनके पास प्रव्रजित हुआ यावत् ईर्यासमिति आदि से युक्त गुप्तब्रह्मचारी अनगार हो गया ।

तत्पश्चात् पूर्णभद्र अनगार ने उन स्थविर भगवंतों से सामायिक से प्रारंभ कर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और बहुत से चतुर्थ, षष्ठ, अष्टमभक्त आदि तपःकर्म से आत्मा को परिशोधित करके बहुत वर्षों तक श्रामण्यपर्याय का पालन किया । मासिक संलेखनापूर्वक साठ भोजनों का अनशन द्वारा छेदन कर आलोचनापूर्वक समाधि प्राप्त कर काल करके सौधर्मकल्प के पूर्णभद्र विमान में देव रूप से उत्पन्न हुआ । यावत् भाषा-मन पर्याप्ति से पर्याप्त भाव को प्राप्त किया । भदन्त ! पूर्णभद्र देव की कितने काल की स्थिति बताई है ? 'गौतम ! दो सागरोपम की ।'

'भगवन्! वह पूर्णभद्र देव उस देवलोक से च्यवन करके कहाँ जाएगा ? 'गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्ध होगा यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेगा ।'

अध्ययन-५-का मुनि दीपरत्नसागरकृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

अध्ययन-६-माणिभद्र

सूत्र - १०

भगवन् ! यदि श्रमण यावत् निर्वाणप्राप्त भगवान् ने पुष्पिका के पंचम अध्ययन का यह आशय कहा है तो इसके षष्ठ अध्ययन का क्या अर्थ बताया है ?

आयुष्मन् जम्बू ! उस काल और उस समय राजगृह नगर था । गुण-शिलक चैत्य था । राजा श्रेणिक था । महावीर स्वामी का पदार्पण हुआ । मणिभद्र देव सुधर्मासभा के मणिभद्र सिंहासन पर बैठकर यावत् रहा था । पूर्वभद्र देव के समान वह भी भगवान के समवसरण में आया और वापिस लौट गया । गौतम स्वामी ने उनको देव-ऋद्धि एवं पूर्वभव के विषय में पूछा ।

भगवान ने कहा–उस काल और उस समय मणिपदिका नगरी थी । मणिभद्र गाथापति था । उसने स्थविरों के समीप प्रव्रज्या अंगीकार की । ग्यारह अंगों का अध्ययन किया । बहुत वर्षों तक श्रामण्यपर्याय का पालन किया और मासिक संलेखना की । पापस्थानों का आलोचन–करके समाधिपूर्वक मरण करके मणिभद्र विमान में उत्पन्न हुआ । वहाँ उसकी दो सागरोपम की स्थिति है ।

अन्त में उस देवलोक से च्यवन करके महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होगा और सर्व दुःखों का अन्त करेगा।

अध्ययन-६-का मुनि दीपरत्नसागरकृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

-----x-----x-----x-----x-----x-----

अध्ययन-७-से-१०

सूत्र - ११

इसी प्रकार दत्त, शिव, बल और अनादृत, इन सभी देवों को पूर्णभद्र देव के समान जानना । सभी की दो-दो सागरोपम की स्थिति है । इन देवों के नाम के समान ही इनके विमानों के नाम हैं । पूर्वभव में दत्त चन्दना नगरी में, शिव मिथिला, बल हस्तिनापुर और अनादृत काकन्दी नगरी में जन्मे थे ।

अध्ययन- ७ से १०- का मुनि दीपरत्नसागरकृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

-----x-----x-----x-----x-----x-----

२१-पुष्पिका-उपांगसूत्र-१० का
मुनि दीपरत्नसागरकृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

પૂજ્યપાદ્ શ્રી આનંદ–ક્ષમા–લલિત–સુશીલ–સુધર્મસાગર ગુરુભ્યો નમ:

२१

पुष्पिका

आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद

[अनुवादक एवं संपादक]

आगम दीवाकर मुनि दीपरत्नसागरजी

[M.Com. M.Ed. Ph.D. श्रुत महर्षि]

વેબ સાઈટ:– (1) www.jainelibrary.org (2) deepratnasagar.in

ઈમેલ એડ્રેસ:- jainmunideepratnasagar@gmail.com મોબાઈલ 09825967397